Q1. करारोपण सांविधियो का निर्वचन किस प्रकार किया जाता है ? उदाहरण सहित समझाइये।

कर कानूनों का कठोर अर्थान्वयन - कर निर्धारण एवं कर अधिरोपण को एक प्रकार से दण्ड के अधिरोपण के समान माना जाता है। इसीलिए दण्ड कानूनों के कठोर अर्थान्वयन की भाँति कर अधिरोपित करने वाले अथवा धन सम्बन्धी भार डालने वाले कानूनों का अर्थान्वयन भी कठोर होता है। किसी भी व्यक्ति पर कर का अधिरोपण तब तक नहीं किया जा सकता है, जब तक कि कानून की भाषा में बिना कोई खींचतान किये हुए स्पष्टतः इस प्रकार से उल्लिखित न हो। कर अधिरोपित करने का विधायिका का आशय उसके द्वारा प्रयुक्त की गयी अभिव्यक्तियों के प्राकृतिक अर्थों से स्पष्ट होना चाहिए। किसी प्रकार के अभिप्राय व उपधारणा के आधार पर कर का अधिरोपण मान्य नहीं होता है। कर का अधिरोपण विवक्षा के आधार पर नहीं हो सकता है।

भाषा की स्पष्टता अनिवार्य है। यदि वह व्यक्ति जिस पर कि कर अधिरोपित किया जाना है विधान की भाषा के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से वर्णित है, तो कर अवश्य अधिरोपित किया जाना चाहिए, चाहे ऐसा करने से न्यायिक मस्तिष्क में कष्ट की अनुभूति होती हो। यदि किसी कर कानून की भाषा स्पष्ट हो, तो उसके परिणाम की परवाह न करते हुए उसे लागू किया जाना चाहिए। आर्थिक भार डालने वाले कानूनों को उन व्यक्तियों के पक्ष में कठोर रूप में निर्वाचित किया जाना चाहिए, जिस पर कि भार डालने की इच्छा है। कर कानून के साथ किसी प्रकार की खींचतान करना अथवा उसे अत्यधिक सीमित करना, ये दोनों की कार्य यदि एक निश्चित सीमा से अधिक किये जाते हैं, तो इसमें पक्षपात एवं विकृति की सम्भावना हो जाती है।

यदि किसी कर अधिनियमिति की भाषा के साथ बिना किसी खींचतान किये हुए उसके दो युक्तियुक्त अर्थ निकलते हों तो वह अर्थ उचित समझा जाना चाहिए, जोकि निर्धारिती के हित में है। कर कानून को विवक्षा के द्वारा लागू किया जा सकता तथा उसका सादृश्यमूलक विस्तारण भी वर्जित है। कर कानून का निर्वचन करते समय साम्यपूर्ण बातों का ध्यान रखना अनुचित है। सामान्यतया कर कानून भूतलक्षी प्रभाव नहीं रखते हैं, जब तक कि उसकी भाषा इस प्रकार का कोई स्पष्ट संकेत न देती हो।

कर कानूनों के सम्बन्ध में **मथुराम अग्रवाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य**, A.I.R. 1999, S.C.W. 4069 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि कर संविधि को स्पष्ट एवं असंदिग्ध रूप से कर कानून के तीन भागों को स्पष्ट करना चाहिए जोकि-(1) कर का विषय; (2) कर की वह दर जिस पर कि कर अदा किया जाना है, तथा (3) वह व्यक्ति जो कर अदा करने के लिए दायी है। यदि किसी कर संविधि में इन तीनों विशिष्टियों के सम्बन्ध में कोई संदिग्धता तो कानून में कोई कर नहीं है। तब मामले में आवश्यक कार्यवाही करने का उतरदायित्व विधायिका का हो जाता है।

धनकर आयुक्त अहमदाबाद बनाम ऐलिस जिमखाना, A.J.R. 1998, S.C. 120 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया है कि विवक्षित आधार पर किसी पर भी कर अधिरोपित नहीं किया जा सकता। प्रभारी धारा का अर्थान्वयन कठोरता से किया जाना आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति को स्पष्ट शब्दों के द्वारा किसी प्रभारी धारा की परिधि में नहीं लाया गया हो तो उस पर कर अधिरोपित नहीं किया जा सकता है।

स्टेट लेवेल कमेटी बनाम मोरगार्दशम्मार इण्डिया लि., A.I.R. 1996, S.C. 524 के मामले में उत्तर प्रदेश विक्रय कर अधिनियम, 1948 के स्पष्टीकरण के खण्ड (क) में प्रयुक्त किये गए शब्दों 'पहले ही उपयोगिता' तथा 'उपयोग के लिए अर्जित' का निर्वचन करते हुए उच्चतन न्यायालय ने अवधारित किया कि उन शब्दों के अर्थ समान नहीं हैं। कारखाना लगाने के लिए एक कम्पनी के द्वारा क्रय की गई मशीनों में से कुछ को दूसरी कम्पनी ने अपने उपयोग के लिए पूर्व में ही क्रय किया था और इस प्रकार वह कम्पनी छूट प्राप्त करने की अधिकारी नहीं है क्योंकि ऐसा करना स्पष्टीकरण के खण्ड (क) के विपरीत होगा।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

उपबन्ध का कठोर अर्थान्वयन करते हुए यह अवधारित किया गया कि जब छूट अधिसूचना के दो अर्थ निकल रहे हों तो उसे करदाता के पक्ष में अर्थान्वित करने की आवश्यकता नहीं है।

इण्डियन केबल कम्पनी लिमिटेड बनाम केन्द्रीय उत्पादन शुल्क कलेक्टर, A.L.R. 1995, S.C. 64 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि कर कानूनों में सुसंगत प्रविष्टि या मद के अर्थान्वयन में यदि यह प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली प्रविष्टि या मद हो, तो सम्बद्ध प्राधिकारी सामान्यतः उसका वही अर्थ लेगा जिस अर्थ में आमतौर पर या वाणिज्यिक क्षेत्र में; या व्यावसायिक क्षेत्र में उसे जाना जाता हो। उसे उसके प्रचलित अर्थ में हो समझना चाहिए, क्योंकि इसमें शब्दकोशीय अर्थ नहीं होते हैं। उसको किसी तकनीकी या वनस्पतीय या वैज्ञानिक अर्थ में ही नहीं समझा जाना चाहिए। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1994 की धाराओं 3 और 2 (घ) में प्रयुक्त शब्द 'विपण्णीय' का अर्थ 'विक्रेयी' या विक्रय के योग्य है। यह आवश्यक नहीं है कि उसे बाजार में ले जाया जाये। वह बाजार में उपभोक्ता के लिए विक्रय के योग्य हो या उसे बेचा जाय।

आयकर आयुक्त हैदराबाद बनाम पी. जे. केमिकल्स लिमिटेड, A.I.R. 1994, S.C. 2727 के मामले में आयकर अधिनियम, 1961 की धाराओं 32 एवं 43 (1) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'वास्तविक व्यय' के निर्वाचन का प्रश्न उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिश्चित किया गया कि इस अभिव्यक्ति को उदारवादी दृष्टिकोण से निर्वाचित किया जाना चाहिए। सरकार जिस प्रकार की सहायकी उद्योगों को देती है, उसमें वे अनुषंग सम्मिलित नहीं हैं जिनमें 'वास्तविक व्यय' से कटौती करने की अवस्थाएँ भी हों। यह कहना अयुक्तियुक्त नहीं है कि, सरकारी सहायिकी आस्तियों के व्यय के एक भाग को चुकाने के लिए एक प्रोत्साहन नहीं है। इस कारण यह उस प्रकार का भुगतान नहीं है, जिसका आशय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से 'वास्तविक व्यय' को चुकाने के लिए किया जाय।

डी. एच. ब्रदर्स प्रा. लि. बनाम विक्रय कर आयुक्त, A.I.R. 1991, S.C. 1992 के मामले में निर्धारिती ने उत्तर प्रदेश विक्रय कर अधिनियम, 1948 की धारा 35 के अन्तर्गत विक्रय कर आयुक्त की अधिकारिता की माँग करते हुए न्यायालय से यह घोषित करने की प्रार्थना की कि राज्य सरकार द्वारा जारी की गई 1980 की अधिसूचना जिसके द्वारा कृषि उपकरणों को बिक्री कर.. से बाहर रखा गया है, के अन्तर्गत गन्ने से रस निकालने वाला 'कोल्हू' कृषि उपकरण है। उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए विनिश्चित किया कि गन्ने से रस निकालने वाला 'कोल्हू' एक कृषि उपकरण नहीं है। न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया कि अधिसूचना में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'कृषि उपकरण' की परिभाषा एक सम्मिलित करने वाली परिभाषा होने के कारण इसका प्रभाव व्यापक है। अतः कोई अन्य उपकरण यदि कृषि उपकरण की तरह हो तो वह भी इस परिभाषा के अन्तर्गत कृषि उपकरण ही होगा। उपकरणों की भूमि को सतही तौर पर पढ़ने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि भूमि को जोतने के कार्य में तथा अन्य ऐसे कार्यों में जिससे उपज में वृद्धि होती हो एवं जिनसे कृषि उत्पादनों का संरक्षण होता हो, उपकरणों का उपयोग किया जाता है और वे उपयोग कृषि प्रक्रिया के पूर्ण होते ही समाप्त हो जाते हैं। गन्ने के सम्बन्ध में कृषि प्रक्रिया फसल काटने पर ही समाप्त हो जाती है। गन्ने से गुड़ बनाना कृषि प्रक्रिया को जारी रखना नहीं है। अतः इस प्रक्रिया में उपयोग में लिया जाने वाला 'कोल्हू' अधिसूचना के अन्तर्गत 'कृषि उपकरण' नहीं है।

पेट्रोल इन्जीनियरिंग कन्स्ट्रक्शन प्र. लि. बनाम केन्द्रीय बोर्ड, प्रत्यक्ष कर, A.I.R. 1989, S.C. 501 के मामले में आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 80-ण के सम्बन्ध में अभिव्यक्ति 'विदेशी उद्यम' के निर्वचन का प्रश्न था उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि अभिव्यक्ति 'विदेशी उद्यम' अभिव्यक्ति 'विदेशी कम्पनी' से विस्तृत है। पूर्व कथित में पश्चात् कथित भी सम्मिलित है। पश्चात् कथित एक कम्पनी है जो किसी विदेशी विधि के अन्तर्गत निगमित है। विदेश में भारतीय कम्पनी अथवा उसकी कोई शाखा 'विदेशी उद्यम' नहीं है। यह सत्य है कि जब दो निर्वाचन सम्भव हों तो उनमें से वह जो निर्धारिती के पक्ष में हो, उचित है परन्तु इस मामले में केवल एक ही अर्थ है और वह स्पष्ट है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कराधान सम्बन्धी विधियों की व्याख्या करने में निम्नलिखित बातें ध्यान रखने योग्य हैं---

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

1. कराधान की भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध होनी चाहिए।
2. कराधान सम्बन्धी विधियों का अर्थान्वयन कठोरता से किया जाना चाहिए।
3. करों की छूट सम्बन्धी उपबन्धों की व्याख्या भी कठोरता से की जानी चाहिए।
4. सन्देह की स्थिति में व्याख्या निर्धारिती के पक्ष में अथवा लोकहित में की जानी चाहिए।
5. कराधान विधियों की कठोर व्याख्या का सिद्धान्त कार्य प्रणाली विषयंक उपबन्धों पर लागू नहीं होता है।
6. शब्दों की व्याख्या उनके प्रचलित एवं लोकप्रिय अर्थों में की जानी चाहिए।
7. कराधान विधियों की व्याख्या अशरशः की जानी चाहिए।.
8. व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि करों की चोरी अथवा कर प्रवंचना को बढ़ावा न मिले।
9. न्यायालयों को व्याख्या के समय उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

Q2. किन परिस्थितियों में दण्ड विधि का कठोर निर्वचन किया जाता है ?.

दण्ड कानूनों का कठोर अर्थान्वयन-किसी व्यक्ति को उसी अवस्था में दण्डित किया जाना चाहिए जब दण्ड उपबन्ध की भाषा स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति को दण्डित करने के लिए कहे। इसलिए दण्ड कानून में किसी उपबन्ध का अर्थान्वयन करते समय जब कोई युक्तियुक्त सन्देह अथवा संदिग्ध प्रतीत हो, तो उसका समाधान उस व्यक्ति के पक्ष में किया जाना चाहिए जिसे कि दण्डित किया जा रहा है। यदि किसी दण्ड उपबन्ध का निर्वाचन इस प्रकार से किया जा सकता हो जिसमें कि दण्ड से बचा जा सके, तो ऐसा ही करना समीचीन होता है। यदि किसी दण्ड कानून में कोई ऐसा उपबन्ध निर्वचन के लिए आता है, जिसका कि अर्थान्वयन युक्तियुक्त ढंग एवं समुचित रूप दो प्रकार से किया जा सकता हो, तो उनमें से सबसे अधिक सदृश अर्थान्वयन को ही प्रभावशील करना चाहिए, क्योंकि दण्ड विधानों में हमेशा सन्देह का लाभ अभियुक्त को ही दिया जाता है। इसमें कदाचित विधायिका का यह आशय निहित है कि, निर्दोष को किसी भी प्रकार से दण्डित न किया जाये।

मैक्सवेल के अनुसार, दण्ड कानूनों का कठोर अर्थान्वयन स्वयं को मुख्य रूप से चार प्रकार से व्यक्त करता है.....

1. अंपराध के सर्जन के लिए स्पष्ट भाषा की माँग में;

2. अपराध के आवश्यक तत्वों को व्यक्त करने के शब्दों के कठोर निर्वचन में,

3. दण्डित किये जाने से पूर्व कानूनी शर्तों के पत्र के पूर्ण करने में; तथा
4. आपराधिक प्रक्रिया एवं अधिकारिता सम्बन्धी तकनीकी उपबन्धों के कठोर अनुपालन पर * बल देने में।

जब तक किसी कानून की भाषा किसी कार्य को स्पष्टत: अगराध नहीं करत तक उस कार्य को अपराध नहीं माना जायेगा। किसी कार्य अथवा लोप जिसको अपराध माना गया है, में प्रयोग किये गये शब्दों में यदि कोई संदिग्धता हो; और उससे ऐसा प्रतीत हो कि, वह कार्य अर्थवा लोग उस कानून की भाषा के अन्तर्गत अपराध हो भी सकता है और नहीं भी, तो ऐसी संदिग्धता को अभियुक्त के पक्ष में संकल्पित किया जायेगा।

न्यालय किसी व्यक्ति को तभी दण्डित करेगा जब उस मामले की परिस्थितियाँ स्पष्टतः विधि में प्रयोग किये गये शब्दों के अन्तर्गत आती हों। दण्डित करने के सन्दर्भ में अधिकारिता तथा प्रक्रिया से सम्बन्धित विधानों का अर्थान्वयन कठोर रूप से किया जायेगा। जहाँ पर किसी दण्ड कानून में उस कानून द्वारा कुछ प्रक्रिया सम्बन्धी अपेक्षाएँ निर्धारित की गयी हों, तो अभियुक्त को दण्डित करने से पूर्व न्यायालय यह देखने को बाध्य है कि सभी अपेक्षाएँ पूर्ण की गयी हैं। इन परिस्थितियों में किसी शंका का निवारण अभियुक्त के पक्ष में ही होगा। यदि इस शंका निवारण से अभियुक्त को इतना लाभ मिले कि उसे किसी तकनीकी आधार पर छोड़ दिया जाना चाहिए तो

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

न्यायालय उसे बिना दण्डित किये ही मुक्त कर देगा। दण्ड उपबन्धों को किन्हीं विशिष्ट मामलों अथवा परिस्थितियों में भी आशय अथवा निहितार्थ के आधार पर विस्तारित नहीं किया जा सकता। ऐसी कोई उपधारणा नहीं हो सकती कि, किसी अपराध को आन्वयिक रूप से कारित किया गया। दण्ड कानून समान्यतया भविष्यलक्षी प्रभाव रखता है।

पंजाब राज्य बनाम रामसिंह, A.1.R. 1992, S.C. 2188 के मामले में एक कांस्टेबिल अपने कर्त्तव्यकाल के दौरान बहुत अधिक शराब पीकर बाजार में अपना सेवा रिवाल्वर लिये घूम रहा था। जब उसे स्वास्थ्य परीक्षण के लिए चिकित्सक के पास भेजा गया तो उसने वहाँ के चिकित्साधिकारी को गालियों दी, जिससे उसके द्वारा शराब पीकर भ्रष्टता अथवा अपचार की आदत का पता चलता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि उसका यह आचरण र अपचार होने के कारण उसकी सेवा से पदच्युति का आधार है और इसलिए अधिकारियों द्वारा उसको पदच्युत कर दण्डित करना उचित है।

यद्यपि अभिव्यक्ति 'अपचार' की कोई निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती है, परन्तु इसकी स्पष्ट करने में इसके सन्दर्भ का बहुत महत्व है और साथ ही कार्य में हुए अपचार की तथा अनुशासन पर उसका प्रभाव एवं कर्त्तव्य की प्रकृति भी महत्वपूर्ण है। इसमें नैतिक अक्षमता हो सकती है, इसमें दोषपूर्ण अथवा अनुचित व्यवहार, जान-बूझकर किया गया अवैधानिक व्यवहार, • निषिद्ध कार्य, आचार संहिता या कार्य के स्थिर तथा निश्चित नियमों का उल्लंघन अवश्य ही होगा, परन्तु केवल निर्णय की गलती या कर्तव्य के दौरान असावधानी अथवा उपेक्षा से हो "अपचार" स्पष्ट नहीं होता जब तक कि उसमें किसी निषिद्ध कार्य को करना सम्मिलित न हो। विषय-वस्तु, सन्दर्भ, कानून की परिधि तथा जिस लोक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इसको पारित किया गया, यह सभी बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं |

मैं. गुजरात ट्रावणकोर एजेन्सी बनाम आयकर आयुक्त, A.I.R. 1989, S.C. 1671 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 271 (1) (क) में आयका अधिकारी के यह सन्तुष्ट होने पर कि कोई व्यक्ति जिना युक्तियुक्त कारणों के अपनी कुल आय की विवरणी प्रस्तुत करने में विफल रहा है, दण्ड का प्रावधान है, तथा धारा 276-7 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति धारा 139 (1) के अन्तर्गत जानबूझ कर अपनी आय की विवरणी समय पर दाखिल नहीं करता है, तो वह इस धारा के अन्तर्गत निश्चित अवधि के लिए कठोर कारावास से दण्डित किया जा सकेगा। जब तक कि कानून की भाषा में हो आपराधिक मनःस्थिति साबित किये जाने का स्पष्ट उल्लेख न हो, तब तक साधारणत: इतनी साबित किया जाना ही पर्याप्त है कि, अभियुक्त ने उपबन्ध का उल्लंघन किया है।

केरल राज्य बनाम मथाई वीज, AIR 1987 S.C. 33 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 489- क का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बारा सभी देशों के 'करेंसी नोटों' को प्रतिषिद्ध करती है तथा यह प्रतिषेध केवल भारतीय करेंभी नोटों तक ही सीमित नहीं है। विधायिका ने इस उपबन्ध में अभिव्यक्ति 'भारतीय करेंसी नोट' का प्रयोग नहीं किया है। यदि उसका आशय केवल भारतीय करेंसी नोटों तक ही सीमित होता तो वह सुस्पष्ट रूप से ऐसी भाषा का प्रयोग कर सकती थी। अभिव्यक्ति 'करेंसी नोट' इतना विस्तृत है कि वह किसी भी देश के करेंसी नोटों को अपने भीतर समेटती है। इस प्रतिकूल अवधारित करने पर विधायी आशय विफल हो जायेगा क्योंकि तब भारतीय करेंसी नोटों को छोड़कर बाकी सभी देशों के करेंसी नोटों का कूटकरण विधिक होगा और विधायिका का आशय इस प्रकार का कदापि नहीं हो सकता है।

ए. एस. सुलोचना बनाम सी. धर्मलिंगम, A.I.R. 1987, S.C. 242 के मामले में तमिलनाडु भवन (पट्टा एवं किराया नियन्त्रण) अधिनियम, 1960 की धारा 10 (2)(ii) के निर्वचन का प्रश्न विचारणीय था। उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि चूँकि उक्त धारा एक दण्ड कानून है, क्योंकि वह किरायेदार के द्वारा पुनः किराये पर उठाने अथवा शिकमी देने को वर्जित करते

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

हुए वेदखली के दण्ड का प्रावधान करती है, अत: उसका निर्वचन कठोर किया जाना चाहिए। यह उपबन्ध तभी लागू होता है जब किरायेदार ने स्वयं, न कि उसके पूर्व के किरायेदार जो प्रस्तुत मामले में उसके मृतक पिता था, ने शिकमी दिया हो । प्रस्तुत मामले में ऐसा नहीं है क्योंकि वर्तमान किरायेदार के मृत पिता ने ऐसी स्थिति उत्तराधिकार में प्राप्त की थी।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से दण्ड विधियों की व्याख्या के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें के स्पष्ट होती हैं -

(क) दण्ड विधियों की व्याख्या कठोरता से की जानी चाहिए।
(ख) दण्ड विधियों की व्याख्या उदारतापूर्वक लोकहित में ही जानी चाहिए।
(ग) जहाँ किसी उपबन्ध की व्याख्या से एक से अधिक अर्थ निकलते हों अथवा सन्देह उत्पन्न होता हो वहाँ उसकी व्याख्या अभियुक्त व्यक्ति के पक्ष में की जानी चाहिए।
(घ) दण्ड विधियों का भूतलक्षी प्रवर्तन नहीं किया जाना चाहिए, यदि ऐसा करने से अभियुक्त व्यक्ति के हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ता हो ।
(ङ) किसी पश्चात्वर्ती विधि को भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया जा सकता है, यदि उससे अभियुक्त व्यक्ति को लाभ होता हो, जैसे कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम ।
(च) दण्ड विधियों की व्याख्या करते समय न्यायालयों द्वारा अपनी ओर से कोई शब्द जोड़ने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।
(छ) दण्ड विधियों में प्रयुक्त की गई भाषा एवं शब्दों को उनके प्रचलित एवं लोकप्रिय अर्थों में ग्रहण किया जाना चाहिए। -
(ज) प्रत्येक अपराध के गठन के लिए आपराधिक मनःस्थिति का होना आवश्यक नहीं है।
मैक्सवेल ने अपनी पुस्तक 'इण्टरप्रिटेशन ऑफ स्टेट्यूट' में विचार व्यक्त किया है कि आधुनिक निर्णयों में कठोर एवं हितकारी व्याख्या संरचना के भेद को कम कर देने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। सभी संविधियों की व्याख्या अब उनमें प्रयुक्त की गई भाषा को सावधानीपूर्वक ध्यान में रखते हुए की जाती है तथा दाण्डिक विधियाँ पहले की अपेक्षा अब अधिक विधायिका के आशय के अनुरूप अर्थान्वित की जाती हैं। यह रूप से उचित है कि न्यायिक मस्तिष्क से कठोर एवं हितकारी व्याख्या से संरचना के भेद को सम्पूर्णतया समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि हमारी स्वतन्त्र संस्थाओं की अन्तर्रात्मा में यह निहित है कि संविधियों की व्याख्या वैयक्तिक स्वतन्त्रता के पक्ष में की जाय और यही प्रवृत्ति आज भी भाषा की कतिपय कमियों को दूर करने के प्रसंग में मान्य हैं; या यह सिद्धान्त मान्य है कि किसी अस्पष्ट अंश को खींचातानी करने तथा संदिग्ध प्रभावों के मुक्त करने से बचाया जाय।

Q3. निम्नलिखित पर टिपण्णी कीजिए –

(a)साम्य विषय – वस्तु कानून।

(b)संहिताकारी कानून।

(c)समेकनकारी कानून।

(A) साम्य विषय-वस्तु कानूनों का निर्वचन--किसी कानून में प्रयुक्त की गयी किसी अभिव्यक्ति के अर्थ को निर्धारित करते समय समान विषय-वस्तु से सम्बन्धित पूर्व के किसी कानून में प्रयोग की गयी किसी विशेष अभिव्यक्ति से निर्देश या संकेत किया जा सकता है। जहाँ पर साम्य विषय-वस्तु के विभिन्न कानून हों, चाहे उन्हें भिन्न-भिन्न समयों में विरचित किया गया हो अथवा वे निरसित हो चुके हों तथा एक दूसरे से सम्बन्ध न रखते हों, तो भी उन्हें साथ-साथ एक पद्धति के रूप में एक-दूसरे के स्पष्टीकरण के लिए लिया जा सकता है तथा इसी रूप में में इसका अर्थान्वयन किया जायेगा। परन्तु मैक्सवैल के अनुसार, यह अधिक अच्छा समझा गया है। कि पूर्व कानूनों का निर्देश तभी लिया जाय जब कि किसी अभिव्यक्ति के अर्थ में कोई संदिग्धता हो। कानून तब साम्य विषय-वस्तु के होते हैं जब वे समान वस्तु अथवा वर्ग से अथवा समान व्यक्ति से विचार करते हों, परन्तु इसमें इतना ही पर्याप्त नहीं है कि, वे समरूप विषय-वस्तु पर विचार करते हों।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

असामान्य परिस्थितियों के सम्बन्ध में विधायिका भी यह कह सकती है कि, दो अधिनियम साथ-साथ पढ़े जायेंगे। ऐसे मामलों में न्यायालयों द्वारा यह अभिनिश्चित करना आवश्यक है कि, प्रत्येक अधिनियम का प्रत्येक भाग एक अधिनियम के अन्तर्गत समाप्त हुआ है। जब तक कि ऐसा करने से बेतुके अथवा निरर्थक परिणाम न निकलें, जिसके कारण ऐसा करना आवश्यक हो कि पूर्व के अधिनियम को पश्चात् कथित अधिनियम द्वारा उपान्तरित कर दिया गया।

जहाँ किसी कानून को निरसित किये गये जाने के पश्चात् लगभग सम्पूर्ण रूप में ही पुनः अधिनियमित किया गया हो, तो इससे यही समझा जायेगा कि उस निरसित किये गये अधिनियम के अन्तर्गत दिये गये न्यायिक निर्णयों का ज्ञान विधायिका को था और इसीलिए नये अधिनियम के अन्तर्गत भी उनका निर्वचन समान रूप से ही किया जायेगा, परन्तु इससे न्यायालय के द्वारा पूर्व निर्णयों को उलटने की शक्ति पर कोई अंकुश नहीं लगता है।

यदि संसद का कोई अधिनियम समान विषय से सम्बन्धित पूर्व के संसद के ही अधिनियम, जिसे समान उद्देश्य तथा समान ध्येय से पारित किया गया था; के समान भाषा का प्रयोग करता है तो, अर्थान्वयन का सुरक्षित एवं सुप्रसिद्ध नियम यही है कि यह उपधारणा कर ली जाय कि विधायिकता के जाने-माने शब्दों में जिन पर जाने-माने निर्णय दिये जा चुके हैं, उन्हीं अर्थों में प्रयोग किया है, जो निर्णयों ने उन्हें दिये हैं। परन्तु यह कोई नियम नहीं है, बल्कि यह मात्र उपधारणा ही है, इसलिए इस उपधारणा को खण्डित भी किया जा सकता है, परन्तु इसे खण्डित करने का उचित आधार होना चाहिए।

उपरोक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि दो अधिनियम साम्य विषय वस्तु कानून न हों तो उन दोनों अधिनियमों में किसी एक ही शब्द का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया हो, यह आवश्यक नहीं है। बम्बई उच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड बना पुरुषोत्तम जोशी, A.I.R. 1997, मुम्बई 160 के मामले में अवधारित किया है कि किसी कानून में किसी अभिव्यक्ति का अर्थ किसी अन्य कानून में भी वही हो, यह जरूरी नहीं है। औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत प्रयुक्त किया गया शब्द 'उद्योग' आयकर अधिनियम के अन्तर्गत प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'औद्योगिक उपक्रम' तथा मुम्बई दुकान एवं स्थापन अधिनियम के अन्तर्गत प्रयुक्त की गई अभिव्यक्ति 'वाणिज्यिक स्थापन' के अर्थ केवल इन्हीं अधिनियमों की परिसीमा तक ही सीमित हैं। अतः किसी प्रकार भी यह अवधारित नहीं किया जा सकता है कि चूंकि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन होटल एक उद्योग है इसलिए महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड केवल औद्योगिक उपयोग के लिए निर्धारित राशि ही अधिरोपित कर सकता है।

सर सिल्क लिमिटेड बनाम कपड़ा समिति, A.I.R. 1989, S.C. 317 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिश्चित किया गया कि, उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 तथा कपड़ा समिति अधिनियम, 1963 को साम्य विषय-वस्तु कानूनों के रूप में माना जा सकता है। अन्य बातों के साथ-साथ दोनों ही कानूनों के उद्देश्य, कपड़ा उद्योग की सुरक्षा तथा उसके विकास में सहायता करना है। यदि समान विधायिका द्वारा बाद में पारित कोई कानून का शंका के समय किसी पूर्व कानून के निर्वचन में सहायक के रूप में उपयोग किया जाये तो ऐसा कहने का कोई कारण नहीं है कि संदिग्धता के समय पश्चातूवर्ती कानून के अर्थान्वयन के लिए पूर्व कानून का कोई उपयोग नहीं किया जा सकता। उद्योग अधिनियम, 1951 जो समय के अनुसार एक पूर्व अधिनियम है, में रेयॉन तथा नायलॉन को कृत्रिम (मानव द्वारा निर्मित) रेशे से निर्मित कपड़ा माना गया है।
रामचन्दर बनाम भारत संघ, A.I.R. 1986, S.C. 1173 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियन्त्रण और अपील) नियम, 1965 का नियम, 27 (2) तथा रेलवे कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1968 का नियम, 22 (2) समविषय हैं। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिश्चित किया कि 1968 के नियम, 22(2) की अवमानना करने पर अपीलीय आदेश को निरस्त करना अपरिहार्य होगा।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

मै. एस. एस. सी. ओ. प्रा. लि. बनाम भारत संघ एवं अन्य, AIR 1985 S.C. 76 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि जब निर्वाचन किये जाने वाले शब्द को किसी कर कानून अथवा उसके अन्तर्गत जारी की गई अधिसूचना में प्रयुक्त किया जाता है, तो उसे उसके वाणिज्यिक अर्थ में ही समझा जाना चाहिए। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 को धारा 2 (ञ) के अन्तर्गत शब्द 'उद्योग' की परिभाषा से जारी की गई अधिसूचना में प्रयुक्त किया गया शब्द 'उद्योग' जिसे सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 के अन्तर्गत देय सीमा शुल्क से मुक्त रखा गया है, के निर्वाचन में सहायता नहीं ली जा सकती है। संविधान के अन्तर्गत कई उपबन्ध जैसे अनुच्छेद 19(6)(ii) तथा सप्तम अनुसूची में प्रथम सूची की प्रविष्टियों व 52 द्वितीय सूची की प्रविष्टि 24 तथा तृतीय सूची की प्रविष्टि 33 भी यही दर्शाती हैं कि अभिव्यक्ति 'उद्योग' का अर्थ इतना व्यापक नहीं है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत उल्लिखित किया गया अर्थ केवल इस अधिनियम तक ही सीमित है।

भारत संघ बनाम आर. सी. जैन, A.I.R. 1981, S.C. 951 के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचारणीय प्रश्न यह था कि क्या दिल्ली विकास प्राधिकरण एक 'स्थानीय प्राधिकारी है जिसके कर्मचारी बोनस संदाय अधिनियम, 1965 की धारा 32 (iv) के क्षेत्र के बाहर हैं। इस धारा में उपबन्धित किया गया है कि यह अधिनियम उन कर्मचारियों पर लागू नहीं होगा जो उन स्थापनाओं में कार्यरत हैं जो किसी ऐसे उद्योग के साथ लगी हुई हैं जिन्हें केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार अथवा 'स्थानीय प्राधिकारी' द्वारा स्वयं अथवा अपने अन्तर्गत किसी प्राधिकारी अथवा विभाग के अन्तर्गत चलाया जा रहा हो। अभिव्यक्ति 'स्थानीय प्राधिकारी' को इस अधिनियम के अन्तर्गत परिभाषित नहीं किया गया है परन्तु साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 की धारा 3(31) में इसकी परिभाषा दी गई है, जो इस प्रकार है-कोई महापालिक समिति, जिला बोर्ड, पत्तन आयुक्त का निकाय अथवा अन्य प्राधिकारी जो विधिक रूप से एक महापालिका अथवा 'क्षेत्रीय निधि' का नियन्त्रण अथवा प्रबन्ध करने का हकदार हो अथवा जिसको सरकार ने ऐसा कार्य सौंपा हो, एक 'स्थानीय प्राधिकारी' है। अभिव्यक्ति 'क्षेत्रीय निधि' को साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 द्वारा परिभाषित नहीं किया गया है, यद्यपि इसे मूल नियम एवं खजाना संहिता में स्पष्ट किया गया है। परन्तु उस अर्थ को इस मामले में लागू नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह उचित नहीं है कि एक अधिनियम में प्रयुक्त किये गए शब्दों को अन्य कानूनों के परिभाषा खण्ड में दिये गए अर्थ दिये जायें। धारा 3(31) का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि दिल्ली विकास प्राधिकरण एक स्थानीय प्राधिकारी है और इसलिए बोनस संदाय अधिनियम, 1965 के उपबन्ध लागू नहीं होते हैं।

(B) संहिताकारक कानून -संहिताकारक कानून वह कानून है, जिसका अभिप्राय किसी विशिष्ट विषय पर सम्पूर्ण विधि को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त करना हो, जिसमें प्रारूपकार अपनी संहिता में पूर्ववर्ती कानूनी उपबन्धों को (जैसा की समेकनकारी कानूनों में होता है) तथा विषयों से सम्बन्धित सामान्य विधि नियमों को सम्मिलित करने का प्रयास करता है।

संहिताकारक कानून का निर्वचन करते समय उचित प्रक्रिया यह है कि, सर्वप्रथम कानून की भाषा का परीक्षण किया जाये तथा विधि की पूर्व अवस्था से उत्पन्न किन्हीं परिस्थितियों द्वारा और कोई प्रभाव डाल कर यह ज्ञात किया जाये कि इसका प्राकृतिक अर्थ क्या था, तथा प्रारम्भ में ही यह बिना पूछताछ किये ही कि, पूर्व में विधि की स्थिति क्या थी और तब यह धारण करते हुए कि कदाचित विधि में किसी प्रकार का परिवर्तन करने का कोई आशय नहीं था, यह देखना चाहिए कि क्या अधिनियमिति के शब्द इस प्रकार के सदृश निर्वाचन करते हैं। किसी कानून, जिसका आशय विधि की किसी विशिष्ट शाखा को संहिता के अधीन सम्मिलित करना है, के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जाय तो उसकी उपयोगिता लगभग पूर्ण रूप से विनष्ट हो जायेगी एवं वह उद्देश्य विफल हो जायेगा जिसके लिए कि उसको अधिनियमित किया गया है।

रोहिणी कुमारी बनाम नरेन्द्रसिंह, A.I.R. 1972, S.C. 459 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की उद्देशिका उसे हिन्दुओं में - विवाह सम्बन्धी विधि के संशोधन व संहिताबद्ध करने के रूप में वर्णित करती है। यह सुप्रसिद्ध है कि, जब विधि की किसी विशिष्ट शाखा का संहिताकरण किया जाता है कि आवश्यक रूप से इसका उद्देश्य यह है कि, उस विधि द्वारा स्पष्टतः व्यवहारित किसी विषय को केवल उस संहिताबद्ध विधि में ही खोजा जाना चाहिए, जबकि उससे सम्बन्धित कोई प्रश्न पैदा हो । सामान्यतया जब यह कहा गया हो कि किसी अधिनियम का आशय विधि का संहिताकरण करना है, तो न्यायालय को किसी अन्य विधि को देखने की स्वतन्त्रता नहीं होती है। यह अधिनियम विवाह को न केवल संशोधित करता है, बल्कि संहिताबद्ध भी करता है और इसने विवाह सम्बन्धी पूर्व विधि में मूलभूत एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

भी किये हैं। इस अधिनियम की धारा 4 इसके उपबन्धों को अभिभावी प्रभाव देती है। अतः जब तक किसी अन्य अधिनियम में कोई उपबन्ध न हो, जो इस अधिनियम के किसी उपबन्ध को निराकृत करता है; अथवा उसे स्पष्टतः या आवश्यक विवक्षित तौर पर निरसित करता है, तो इस अधिनियम के अन्तर्गत व्यवहारित विषयों पर केवल यही अधिनियम लागू होगा।

एच. एच. अडवाणी बनाम महाराष्ट्र राज्य, A.I.R. 1971, S.C. 44 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 एक सम्पूर्ण संहिता है जिसमें वे सभी नियम निरसित कर दिये गये हैं, जिन्हें उसमें स्थान नहीं मिला। आपराधिक मामलों में साक्ष्य के किसी नियम के प्रवेश की तब तक कोई गुंजाइश नहीं है, जब तक कि वह धारा 132 अथवा साक्ष्य अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के चारों कोनों के मध्य न हो। चूँकि सागर सीमा शुल्क अधिनियम, 1878 की धारा 171- क के अन्तर्गत सीमा शुल्क अधिकारी द्वारा किये गये परिप्रश्न पर साक्ष्य अधिनियम लागू नहीं होता, इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 132 इस मामले में
लागू नहीं होती। सामान्य विधि से सम्बन्धित किसी सिद्धान्त का समावेशन; जैसे "कोई व्यक्ति स्वयं के विरुद्ध अभियोग लगाने अथवा दोषारोपण करने के लिए बाध्य नहीं है।" (नेनो टेनेटर स्पेसिप्सम एक्यूजेयर) अनुज्ञेय नहीं है।

भारत संघ बनाम मोहिन्द्रा सप्लाई कम्पनी, A.I.R. 1962. S.C. 256 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया जा चुका है कि यद्यपि मध्यस्थम अधिनियम, 1940 एक समेकन एवं संशोधनकारी कानून है, तथापि अधिष्ठाई रूप में मध्यस्थम के सम्बन्ध में यह एक संहिता के रूप में है और इसलिये इसका अर्थान्वयन बिना इस धारणा के किया जाना चाहिये कि इसका आशय अपील सम्बन्धी विधि को परिवर्तित करना था। इस कानून में प्रयुक्त किये गए शब्द स्पष्ट हैं तथा उन्हें सम्पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिये तथा उन्हें उनके प्राकृतिक अर्थ में निर्वाचित किया जाना चाहिये जिसमें विधि की पूर्व स्थिति से उत्पन्न किसी धारणा तथा इस धारणा का कि विधायिका का आशय विधि को अपरिवर्तित रखना ही रहा होगा, कोई स्थान नहीं है। मध्यस्थम अधिनियम, 1940 की अधिनियमिति से पूर्व प्रचलित विधि से विधायिका ने अधिनियम की धारा 39 में अपील सम्बन्धी विधियों का संहिताकरण कर जान-बूझकर विधि में परिवर्तन किया है।

(C) समेकनकारी कानून- जो कानून किसी विशिष्ट विषय से सम्बन्धित सभी कानूनी उपबन्धों की एक स्थान पर, यदि आवश्यक हो तो गौण संशोधन का सुधार कर, एक विधायी अधिनियम के रूप में एकत्रित करता है वह समेकनकारी कानून कहलाता है। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम एवं विवाचन अथवा मध्यस्थम अथवा मध्यस्थता अधिनियम समेकनकारी कानून के अन्तर्गत ही आते हैं।
किसी समेकनकारी कानून अथवा अधिनियम का निर्वचन करते समय यह उपधारणा की जाती है कि इस समय वर्तमान विधि को परिवर्तित करने का कोई भी आशय विधायिका का नहीं है, क्योंकि उसने किसी प्रकार का कोई नया विधान पारित नहीं किया है, बल्कि किसी विशिष्ट विषय पर अलग-अलग फैले हुए सभी सुसंगत कानूनी उपबन्धों को मात्र एक स्थान पर ही एकत्रित किया है। खण्डन करने योग्य एक उपधारणा यह भी है कि, सभी कानूनी उपबन्धों का, जिन्हें एक स्थान पर एकत्रित किया गया है, वही अर्थ बना रहेगा जो उनको पारित किये जाने के समय था। इस उपधारणा का खण्डन समेकनकारी अधिनियम की स्पष्ट भाषा द्वारा अथवा आवश्यक विवक्षित तौर पर लिया जा सकता है। यदि किसी समेकनकारी कानून का एक से अधिक युक्तियुक्त एवं सुसंगत अर्थान्वयन सम्भव हो, तो वह अर्थान्वयन मान्य होगा जो वर्तमान विधि में कम-से-कम हस्तक्षेप करे। अधिष्ठायी एवं प्रक्रिया सम्बन्धी दोनों ही प्रकार के विषयों के सन्दर्भ में उपधारणाएँ विद्यमान रहती हैं।

एस. सी. शर्मा बनाम दिल्ली शासन, A.I.R. 1973, S.C. 913 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि, यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि विधायिका का आशय जो कुछ उसके द्वारा स्पष्टतः घोषित किया गया, के भी परे वर्तमान विधि को पर्याप्त रूप में परिवर्तित करने का था। न्यायालय ने कानूनों के अर्थान्वयन के सन्दर्भ में उद्देश्यों एवं कारणों के कथन तथा उद्देशिका की उपयोगिता को भी स्पष्ट किया।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

आर. पी. कपूर बनाभ प्रतापसिंह, A.I.R. 1964, S. C. 295 के एक पुराने मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि विधेयक समिति के द्वारा पारित किये जाने के समय विधेयक में किये गये परिवर्तन, उद्देश्यों एवं कारणों का कथन तथा प्रवर समिति की रिपोर्ट से किसी पूर्णतः स्पष्ट उपबन्ध को निर्वाचित करते समय कोई सहायता नहीं ली जा सकती।

इसी मामले में उच्चतम न्यायालय ने बहुमत की राय से यह भी स्पष्ट किया है कि, यह कहना उचित नहीं है कि संशोधन के द्वारा भाषा में परिवर्तन किया जाना सर्वदा ही आवश्यक रूप उपबन्ध की विषय-वस्तु अथवा इसके अर्थ में भी परिवर्तन करता है। क्योंकि यह इस बात पर निर्भर है कि, वे शब्द केवल अर्थ को स्पष्ट करने के लिए रखे गये थे अथवा उसके वर्तमान अर्थ को परिवर्तित करने के लिए। संशोधन विधि के पूर्व विधि की अवस्था का उल्लेख और बुराई, जिसे समाप्त करने के आशय से विधान पारित करना आवश्यक था, कानूनों के निर्वाचन के लिए वैध सहायक है, का तर्क उस मामले के सन्दर्भ में पूर्णरूप से अनुपयुक्त है जहाँ पर कि तर्क यह नहीं है कि परिवर्तन किसी कठिनाई को समाप्त करने के लिए किया गया, बल्कि आशय विधि को जैसा सर्वदा समझा गया उसी प्रकार बनाये रखने का था।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW